Page :
Date: / /

('एको रसः करुण एव' की समीक्षा)

प्रस्तुत उक्ति प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरित से गृहीत है, जिसके रचयिता भवभूति ने इस नाटक में करुण रस को इसकी चरम विकास की अवस्था में पहुँचा दिया है—

एको रसः करुण एव निमित्त भेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्त बुद्बुद तरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समग्रम्॥

भवभूति की रसयोजना:—

रसयोजना के सम्बन्ध में प्रायः सभी आलोचकों ने करुण रस को अङ्गीरस के रूप में स्वीकार किया है, जिसका आधार प्रस्तुत श्लोकांश— 'एको रसः करुण एव' है।

करुण रस सम्बन्धी प्राचीन मत:—

करुणा में भी एक विशिष्ट आनन्द की अनुभूति करने वाले कलाप्रेमियों की मान्यता यहाँ तक रही है कि दुःख के संवेग के अवसर पर ही सर्वोत्तम कृतियों की रचना होती है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण आर्ष काव्य रामायण की रचना है। आलङ्कारिक शिरोमणि आनन्दवर्धनाचार्य का भी मानना है——

माधुर्यमार्द्रतां याति यतस्तत्राधिकं मनः।

करुण रस की प्रधानता:—

उत्तररामचरित के सभी अङ्कों, श्लोकों तथा गद्यांशों द्वारा करुणा ही छलकती है, चाहे वह राम का करुण विलाप हो, सीता की मर्मभेदी आत्मवेदना का स्वर हो या जनक कौसल्या अथवा तमसा मुरला का वार्तालाप। सर्वत्र करुणा ही विशिष्ट सामग्रियों द्वारा भिन्न होता हुआ भी एक है। जैसे——

आवर्त बुद्बुद तरङ्गमयान् विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समग्रम्॥

महाकवि भवभूति के करुण रस सम्बन्धी उच्च धारणा को देखकर ही आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है——

भवभूतेः सम्बन्धात् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

Page :
Date: / /

उत्तररामचरित में सर्वत्र बिखरी पड़ी करुणा के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

(I) हन्त हन्त सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः अद्यावसितं जीवित-प्रयोजनमस्य रामस्य। दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्य-मागतम्।"

(II) (अङ्क) चिरादुद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः
कुतश्चित्संवेगात् प्रचल इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः
पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव॥

(III) (अङ्क) हा हा देवि! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥

(IV) अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।

(V) क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः
क्व वाऽन्योन्यप्रेम? क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः!
सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययो-
स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति, न तु पापो विरमति॥

(VI) कथं प्रतिपन्न एव तावत्। हा चारित्रदेवते! लोकान्तर-पर्यवसिताऽसीत्॥

सर्वत्र करुण की ही सिद्धि:—

करुण रस प्रधान उत्तररामचरित में अन्य रस भी विद्यमान हैं परन्तु वे या तो गौणभूत हैं अथवा उनका अन्ततः अन्तर्भाव करुण रस में हो जाता है। भवभूति के अनुसार करुण रस ही रूपान्तरित होकर श्रृङ्गार वीरादि के रूप में परिणत होता है। प्रथम अङ्क में चित्र दर्शन के अवसर पर अनुभूत होने वाला श्रृङ्गार हास्यादि सद्यः विषाद में परिणत हो जाता है।

नाटक के सभी पात्र राम लक्ष्मण, जनक, कौशल्या वनदेवतादि सभी इस करुण रस में निमग्न कर रहे हैं। पञ्चवटी में शोकसन्तप्त राम की दशा —

घनीभूतः शोको विकलयति मां मूर्छयति च॥

राम को यही शोक चरम पर पहुँच जाता है और वे विलाप करते हैं —

हा हा देवि! स्फुटति हृदयं संशयते देहबन्धः।

इस प्रकार समस्त कथानक करुण से ओत-प्रोत है। यहाँ तक कि —

जनस्थाने शून्ये ..... वज्रस्य हृदयम्।

वस्तुतः इस नाटक का करुण पुटपाक के समान ऊपर से नितान्त शान्त दिखने पर भी तीव्र अन्तर्वेदना से सन्तप्त होता रहता है —

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः॥

समीक्षा :-

प्रस्तुत नाटक के सन्दर्भ में यह प्रश्न विचारणीय है कि इसमें प्रधान रस करुण है या करुण विप्रलम्भ शृङ्गार, किन्तु यथार्थ तो यह है कि महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित में करुण रस का सागर नहीं महासागर लहरा रहा है। भवभूति की दृष्टि से एक ही रस है — करुण रस। शृङ्गार आदि तो इसी के भेद हैं, विकार हैं, पोषक हैं। महाकवि ने उत्तररामचरित में करुण रस की सत्ता को बहुत स्पष्ट कर दिया है। सारा नाटक करुणा की छाया से अभिभूत है। अन्य रस तो उसी में उद्भूत होते हैं। अथवा उसके विवर्त हैं। सर्वत्र रसों की आत्मा के रूप में करुण रस ही है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि — "एको रसः करुण एव" कहकर भवभूति ने स्पष्ट निर्देशित किया है कि इस नाटक का प्रधानरस करुण है।